

# भारत नेपाल अन्तः सम्बन्ध और श्री पशुपतिनाथ



डॉ० अयोध्या नाथ झा  
विभागाध्यक्ष, विश्वविद्यालय प्राचीन भारतीय  
इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग,  
ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय  
कामेश्वरनगर दरभंगा, बिहार, भारत।

**शोध आलेख सार-** भारत—नेपाल का अन्तः सम्बन्ध मात्र पड़ोसी देश होने के नाते ही नहीं है अपितु युगों—युगों से चले आते ऐतिहासिक, सांस्कृतिक सामाजिक और आर्थिक नाते—रिश्तों के कारण है। हमारी सीमा से सटे हुए बेशक और भी देश है, लेकिन हमारी भावनाओं की अन्तर्धारा की ऐसी समानता, इतनी निकटता और किसी से नहीं है। सुदूर प्राचीन काल से ही इन दोनों देशों की नसों में सप्राणता का एक ही रक्त—प्रवाह बहता रहा है। एक ही संस्कृति और आदर्श का ध्रुवतारा दोनों के जीवन की प्रगति को मार्ग और दिशा देता रहा है। इतिहास के उस अँधेरे युग से ही, जहाँ तक आँखें और मन की आँखें बहुत साफ—सहज नहीं पहुँच पाती, दोनों देशों की अन्तरात्मा को जोड़नेवाला एक अलसित धागा था। जिन कथाओं और किंवदन्तियों पर प्राचीनता और इतिहास की जिन आधार पर शिलाओं पर हमारे अतीत के गौरव की ऊँची इमारत खड़ी है, उनमें अधिकांश से किसी न किसी रूप में नेपाल से भी लगाव रहा है। श्री पशुपतिनाथ उस लगाव का मूलाधार है। अतः नेपाल सम्बन्धों का प्रवाह नदियों के मध्य प्रवाहित होता आ रहा है। और सम्बन्धों की थाति हम युगों से संयोगे हुए हैं।

**मुख्य शब्द-** भारत, नेपाल, अन्तः सम्बन्ध, श्री पशुपतिनाथ, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक सामाजिक, आर्थिक।

हिमालय पर्वतमाला की गोद में बसे नेपाल की धार्मिक सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परम्पराएँ, रीति—रिवाज, कला—कौशल आदि अतीत काल से ही भारत से सम्बद्ध रहे हैं। भारतीय रचना संसार में इस देश के संबंध में समय—समय पर जितनी चर्चाएँ हुई हैं, उतनी किसी अन्य देश के सम्बन्ध में नहीं। आज भी नेपाल के सैकड़ों तीर्थस्थल मठ—मंदिर, नदी—पर्वत आदि प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना को अक्षुण्ण रखे हुए हैं। जिस प्रकार नेपाल के भू—भाग को अभिषिक्त करती है, उसी प्रकार भारतीय चिन्तन धारा भी नेपाल में प्रवाहित होकर विभिन्न युगों में अपने बहुमूल्य अवदानों से उसे आप्यामित करती रही है। भारतीय धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं के मूल उत्स को जो संरक्षण नेपाल में मिला, यह भारत में भी नहीं मिल पाया इस भू—भाग के कण—कण में भारतीय संस्कृति के अशेष भंडार संरक्षित है। सगरमाथा अर्थात् विश्व का सर्वोच्च शिखरमाला इसके गौरवगाथा को युगों से अपने में संरक्षित किये हुए हैं।

हमारा निकटतम पड़ोसी देश नेपाल से मात्र हमारी भौगोलिक निकटता नहीं है, अपितु सामाजिक सरोकार, सांस्कृतिक समता और ऐतिहासिक नाते-रिश्ते की एक सुदृढ परम्परा है। हमारे देश की चौहदादी में और भी बहुत सारे राष्ट्र हैं, लेकिन हमारी भावनाओं की अन्तर्धारा की ऐसी समानता इतनी निकटता और किसी से नहीं है। हमारी लम्बी सांस्कृतिक परम्परा के प्रवाह में नेपाल का भी बहुत पानी प्रवाहित होता रहा है।

जगतजननी सिता एवं शांति, सद्भाव, भाईचारा प्रेम और अहिंसा के उद्गाता गौतम बुद्ध जो भारतीय प्राणवायु में रचे बसे हैं का पावन अवतरण नेपाल में ही हुआ था। दोनों की जन्मभूमि यहीं है तो कर्मभूमि भारत। अपनी वैचारिक तपश्चर्या से भारतीय ज्ञान गंगा को सतत वेग और विस्तार अनेक ऋषि-मुनियों की जीवन-साधना का क्षेत्र यहीं रहा। वाल्मीकि (भैसालोटन) व्यास (जुमला) विश्वामित्र (पंचपोखरी) याज्ञवल्क्य (कृष्णकौशिकी) भारद्वाज और श्रृगी (गण्डकी-मण्डल) एवं मनु (वझांग) के आश्रम कहते हैं, यहीं थे। यह भी कहा जाता है कि 'कामशास्त्र' के प्रणेता मुनि वात्स्यायन और 'भुगुसंहिता' के रचयिता भृगु मुनि के भी आश्रम यहीं थे – 'गलकोटराज' और भृगुकोट में। गौतम पर भी दावेदारी करते हैं तो सांख्यकार कपिल का आश्रम कपिलातीर्थ को दर्शाते हैं। वैसे भी हिमालय का प्रकृतिप्रदत्त अंचल तपःसाधना की अनुकूल तपोभूमि थी। तपःसाधना की उसी मनोरम और विस्तृत होती रही, लगता है वैचारिक ऐश्वर्य के बीजों का वपनन यहीं हुआ, जो समय के साथ पुष्पित-पल्लवित होते रहे।

अनन्त अनादिकाल से हिमालय हमारी संस्कृति की अक्षय प्रेरणा अनन्त उत्स और अखण्ड प्रहरी रहा है। वह देश के भाल का मणि-मुकुट ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण गति-विधियों का प्रेरणा श्रोत, जीवन के सारे ऐश्वर्य की जमापूँजी के साथ जीवन की गति का नियामक भी रहा है। नागाधिराज हिमालय मात्र हमारी उत्तरी सीमा का प्रहरी ही नहीं है अपितु करुणा विगलित मन का अमृतमय-जल गंगा-यमुना, कोसी-कमला बागमती-गंडकी जैसी अनेक नदियों द्वारा हमारे देश की माटी को शस्य-श्यामला और जीवन बनाता रहा है। इन्हीं नदियों के तट पर हमारी सम्यता-संस्कृति नित नये आयाम तय करती रही। इतिहास का मौन साक्षी है ये नदियाँ। इन्हीं नदियों के प्रलय ने न जाने कितनी बार हमारे अस्तित्व को संहार करने का प्रयास किया। फिर भी हमारे जीवन धारा की संजीवनी है ये नदियाँ। ये नदियाँ भी तो आखिर नेपाल से उस आलाक्षित गहरे आत्मीय संबंधों का संदेशवाहक बनी रही। हिमालय इसीलिए समान रूप से हमारी शोभा और समृद्धि का स्वर्ग है। एतदर्थं हम उसे देवभूमि कहते हैं। कालीदास ने कुमारसम्भव के आरम्भ में ही कहा है :—

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः" और इस देवतात्मा हिमालय ही सम्पूर्ण सर्वोच्च शिखरें यही हैं – सगरमाथा, कंचनजंघा, लोन्से, मकाल, धौलागिरि, अन्नपूर्णा, गोसाइथान, गौरीशंकर, हिमाचल आदि।

हमारी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत की लम्बी कड़ी के एक-एक दिक्पाल श्रीकृष्ण, मुजुश्री, अशोक, नागार्जुन, दिङ्नाग, मत्स्येन्द्रनाथ, शाजिरक्षित, शंकराचार्य, दीपंकर श्रीज्ञान, गोरखनाथ आदि आने-अपने समय में यहाँ पधारे। भावों, आदर्शों का आदान-प्रदान होता रहा, एक दूसरे से उत्प्रेरित और उद्बुद्ध होते रहे।

अमरनाथ, केदारनाथ, बदरीनाथ, विश्वनाथ की तरह ही नेपाल के पशुपतिनाथ हमारे पुज्य और आराध्य है। काशी का कंकड़-कंकड़ शंकर है, वैसे ही नेपाल की सारी भूमि मंदिर और देवमयी है। किंक पैट्रिक ने ठीक ही लिखा है कि निपाल की उपत्यका में जितने घर हैं, उतने ही मंदिर( जितने लोग हैं, उतनी ही देवमूर्तियां।<sup>1</sup> दोनों की एक ही

धर्मप्राणता दोनों के अन्तः सम्बन्ध का प्रतीक और प्रमाण है। नेपाल हमारे दुर्दिन का आश्रयस्थली भी रहा है चाहे राजा शिव सिंह हो या प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के अमर सेनानी नाना फड़नवीस रहे हो या 1942 के भारत छोड़ा संग्राम के नायक जयप्रकाश नारायण रहे हो।

पूर्व में कोसी, पश्चिम में त्रिशूलगंगा उत्तर में शिवपूरी कैलास और दक्षिण में शीतलोदका नदी द्वारा जिस क्षेत्र की सीमा निर्धारित होती थी उसे स्कन्दपुराण ने नेपाल के रूप में निरूपित किया है। 'ने नीति : ताम्पालयति इति निपालः' अर्थात् जहाँ नीति का पालन हो वह नेपाल है। या 'नयेन पाल्यते यः सः नेपालः' नीति द्वारा जो पालित हो वह नेपाल है। स्कन्दपुराण, देवपुराण, वृहन्नलतंत्र वाराहीतंत्र की आख्यामिकाओं में भी नेपाल का वर्णन आता है।

स्कन्दपुराण के हिमवत खंड इसे श्लेष्मान्तक वन' के रूप में भी निरूपित करता है। अर्थात् शाल, ताल, तमाल, हिन्ताल, खजूर, नागरंग और बीजपुर आदि का जंगल हो। चन्द्रमा को क्षयमुक्त होने के लिए देवसभा से यहाँ आना पड़ा था।<sup>2</sup> श्लेष्मानाक वन का मनोरम क्षेत्र भगवान शंकर को भी आकर्षित किया और काशी-कैलास को छोड़ पार्वती के साथ विचरण करने के लिए यहाँ मृगरूप में पधारे थे। भगवान शंकर पशुरूप में यहाँ रहे, एतदर्थ पशुपति के रूप में विख्यात हुए।<sup>3</sup> पशु प्राणिमात्र का बोधक है अतः वे सर्वेश हैं, जगदीश हैं।

श्री पशुपतिनाथ की मूर्ति पंचमुख ज्योतिर्लिंग है। परन्तु द्वादशज्योतिर्लिंग में इनके नाम का उल्लेख नहीं मिलता। यह पंचमुखि ज्योतिर्लिंग पंचप्राण के प्रतीक है – अर्थात् प्राण अपान, समान, उदान और व्यान जो मानव-शरीर को संचालित करता है। ये पंचप्राण अपने क्रम में पाँच कर्मन्द्रियों की अधिष्ठात्री शक्ति है :–

सद्यो वामं तथा घोरं तत्पुरुषं च चतुर्थकम् ।  
पंचमजच तथेशानं योगिनामवयगोचरम् ॥<sup>4</sup>

श्री पशुपति के पंचमुख हैं – सद्योजात, वामदेव, अधोर और तत्पुरुष एवं पाँचवा है ईशान, जिन्हें योगी भी नहीं जानते। इनमें से पहले चार मुख ज्योतिर्लिंग के चारों ओर बने हैं और पाँचवां ईशान शीर्ष पर है। श्री पशुपति नाथ के प्रतीकों का वर्णन शिवकवचस्तोत्रम् करता है<sup>5</sup> :–

“कुन्द, इन्दु, शंख और स्फटिक की तरह उज्जवल वर्णवाले, वेद, अक्षमाला, वरद और अभय चिन्हवाले तीन नेत्र, चार मुख और महाप्रभावशाली सद्योजात पश्चिम दिशा में मेरी रक्षा करें।”

“हाथों में वर, अक्षमाल, अभय और टंक (पत्थर छीलने की छेनी) वाले कमल के केसर जैसे वर्णवाले तीन नेत्र और चार मुखवाले वाम देव उत्तर दिशा में मेरी रक्षा करें।”

“परशु, वेद, अंकुश, पाश, शूल, कपाल, ढक्का और अक्षसूत्र को धारण किये हुए, चार मुख, तीन नेत्र और नील वर्णवाले अधोर दक्षिण ओर मेरी रक्षा करें।”

“चमकती हुई बिजली जैसे स्वर्णवर्णवाले, हाथ में विद्या, वर, अभय, और परशुवाले, चार मुख और तीन नेत्र वाले तत्पुरुष, जब मैं पूर्व दिशा में रहूँ तब मेरी रक्षा करें।”

“वेद, अभय, वर, अंकुश, पाश, टंक, कपाल, ढक्का अक्ष और हाथ में शूल लिए हुए, उज्जवल वर्ण, पाँच मुखवाले, परम प्रकाशवान, ईशान, उर्ध्व की रक्षा करें।”

‘श्री पशुनाथ के ये पाँचो नाम वेद की पाँच ऋचाओं के प्रथम शब्द है।’<sup>6</sup>

‘जाग्रत् नेपाल के रचनाकार ठाकुर श्रीरघुनाथ सिंह के अनुसार पशुपतिनाथ चतुर्थमुख शिवलिंग है और उनके मतानुसार, चतुर्थमुख शिवलिंग नहीं होता। चार मुख सिर्फ ब्रह्मा के होते हैं अतएव शिवजी के पंचमुखी लिंग का उल्लेख मिलता है। चार मुखों के बीच का उठा हुआ लिंग का भाग ही पाँचवां मुख कहलाता है, यह व्याख्या वे नहीं मानते। साथ ही उन्हें पशुपतिनाथ के शिवलिंग में बुद्ध की मूर्ति की प्रतिच्छाया दृष्टगत होती है।’<sup>7</sup>

विन्ध्यप्रदेश में चौमुखी महादेव की एक प्रतिमा है। डा० जनार्दन मिश्र ने अपनी भारतीय प्रतीक विद्या में नासिक के चौमुखी मुखलिंग को उद्घृत किया है।<sup>8</sup>

‘लिंगार्चनतन्त्र में भी पंचमुखी लिंग का उल्लेख सद्योजात? वामदेव, अधोर तत्पुरुष और ईशान को पंचवक्त्र के रूप में मिलता है।’<sup>9</sup>

‘कुलार्णवतन्त्र के अनुसार पाँच आम्नाभ शिव के पाँचो मुखों से निकले हैं जिनमें ऊर्ध्वानाथ सर्वशिरोमणि है, जो ऊर्ध्वमुख से निकला था। इसमें शिव-पार्वती संयुक्त माने जाते हैं।

नेपाल का यह पशुपति लिंग वस्तुतः उमापति लिंग है। चौमुखी शिवलिंग का उल्लेख डा० परमेश्वरी लाल गुप्त ने भी किया है।<sup>10</sup>

डॉ० दिल्लीरमण रेग्मी की –नेपाल-भूगोल, संस्कृत-इतिहास के अनुसार :—

“भारशिवों ने ब्राह्मण-कला का प्रचार किया और जो काठमाण्डू के तत्कालीन मूर्तियों में यह स्पष्ट है। पशुपतिनाथ के लिंग और पशु की मूर्ति भारशिवों के उस महान् देवता के स्वरूप की कल्पना की अभिव्यक्ति है।”<sup>11</sup>

पशुपति ज्योतिर्लिंग के उत्तर मुखवाले वामदेव शक्तियुक्त है अर्थात् अर्द्धनारीश्वर है। लगता है ठाकुर श्री रघुनाथ सिंह ने इसे देखने की जहमत नहीं उठाई अन्यथा शक्तियुक्त शिव के इस ज्योतिर्लिंग में भगवान् बुद्ध की प्रतिच्छाया को प्रतिस्थापित करने का दुःसाहस नहीं करते। प्रचलित परम्परा के अनुसार भगवान् शिव का प्रसाद भोज्य नहीं है। परन्तु यहाँ वामदेव शक्ति के साथ है अतः यहाँ का प्रसाद भोज्य है।

आगे ठाकुर श्री रघुनाथ सिंह ने पशुपति के दीखनेवाले चार मुखों को भगवान् बुद्ध की चार घटनाओं का प्रतीक मानते हैं, अर्थात् जन्म, तपस्या, धर्मचक्र-प्रवर्तन तथा मृत्यु।<sup>12</sup> लगता है सिंह महोदय पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर ऐसी धारणाओं प्रतिस्थापित किया कि शिवमूर्ति में उभय और भूमिस्पर्श मुद्रा के चिन्ह नहीं होते। सद्योजान, वामदेव, तत्पुरुष और ईशान के अलग-अलग रूप और ध्यान का जो वर्णन मिलता है उनमें अभय, वरद आदि मुद्राओं का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

पशुपति के सिर पर बँधे मुकुट को देखकर सिंह महोदय ने लिखा है कि ‘शिव का राजमुकुट से क्या संबंध?’ लगता है सिंह महोदय ने हाथीगुम्फा की प्रसिद्ध त्रिमुखयुक्त शिवलिंग नहीं देखा है, जिसमें मध्यवालेमुख के मस्तक पर मुकुट शोभायमान है। नासिक के चौमुखी महादेव भी मुकुट मंडित है और मुकुट के ऊपर एक कारणचक्र भी है जिसके बारे में कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध ने बाद में धर्मचक्र के रूप में इसका प्रवर्तन किया।<sup>13</sup> उपरोक्त

तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि ठाकुर श्री रघुनाथ सिंह की परिकल्पना कपोल कल्पित प्रभावित हुई। तर्क ही कसौटी पर कहीं सही नहीं साबित हुई।

पशुपतिनाथ के लिंग में बुद्ध की प्रतिच्छाया का एक तर्क यह भी है कि यह मंदिर वैगोल शैली में निर्मित है, यदि यह शिवमंदिर होता तो इसका निर्माण भारतीय मंदिर शैली में हुआ होता। मंदिर निर्माण की अनेक शैलियाँ हैं, अतः इस तर्क में कोई दम नहीं है। सिंह महोदय ने स्वयं इस बात को माना है कि “पशुपति के मंदिर के प्रांगण की रचना हिन्दू-धर्म के अनुसार की गई है और वहां स्थापित नन्दी, घण्टा आदि तथा श्रृंगार गृह एवं नई व्यवहारिक वस्तुओं की रचना भी हिन्दू धर्मानुसार की गई है।<sup>14</sup>

भारत में सर्वधर्म समझाव की भावना प्रवल है। लगता है भारत-नेपाल अनतः संबंध में सर्वधर्म समझाव की समरसता है और उसी का प्रमाण है नेपाल में शैव और बौद्ध के सह-अस्तित्व। लगता है उसी सह अस्तित्व के कारण सिंह महोदय ने पशुपतिनाथ के शिवलिंग में भगवान बुद्ध की प्रतिच्छाया दृष्टिगत हुई। नेपाल सनातन धर्म और बौद्ध धर्म के बीच समन्वय स्थापित करने में सफल रहा परिणामस्वरूप नेपाल एक सूत्र में आवद्ध रहा। और जब बुद्ध दशावतार में शामिल हो गये तो स्वयं बुद्ध विशाल सनातन धर्म में अनतर्भुक्त हो गये।

शिवपुराण भी पशुपतिनाथ लिंग का उल्लेख करता है।<sup>15</sup> इस मंदिर की कलात्मकता भी अद्वितीय है। मंदिर दो-मंजिला है और दोनों मंजिलों की छतों पर स्वर्णलेपित पीतल लगा हुआ है। पीतल पर सोना का लेप तकनीक से चढ़ा हुआ है जो शताब्दियों से देदिप्यमान दिख रहा है और अपनी आभा बिखेर रहा है। यह नेपाली वास्तुकला का एक अप्रितिम उदाहरण है जो उसे अन्य वास्तु शैलियों से उसे अलग करता है। मन्दिर के सम्मुख विशालकाय नन्दी की उच्च सिंहासना पीतल प्रतिमा बड़ी ही प्रभावोत्पादक दिखाई पड़ती है।

मन्दिर के प्रांगण में चतुर्मुखी ब्रह्मा की एक विलक्षण मूर्ति थी। अब यह मूर्ति वहाँ नहीं है। इसका उल्लेख करते हुए वाई० जी० कृष्णमूर्ति ने लिखा है कि “संसार में विरले ही ऐसी प्रस्तर-मूर्तियाँ हैं, जिनमें चतुर्मुख ब्रह्मा की मूर्ति जैसा आपादमस्तक सौन्दर्य और उभरता हुआ ओज हो। इसकी निर्दोष बनावट एवं संगतराशी विलक्षण चातुरी पूर्ण है। इसके ऊपर का वज्रलेप रहस्यपूर्ण है और इसकी मुद्रा विमोहनी है। एक ही पत्थर से बनाई गई चौथी सदी की इस मूर्ति में वजन भी है और प्रतिस्वनन भी। इसकी पृष्ठभूमि की गहराई और इसकी शैली गुप्त कालीन परम्परानुसार है। पद्मासीन ब्रह्मा की यह मूर्ति ध्यान मुद्रा में है और उसकी बगल में एक गाय की पाश्व-रूपरेखा निरेखित है। ब्रह्मा की मूर्ति के गले की रेखाएँ, भ्रमर-सदृश कटि पवित्र जनेऊ, सुगठित और अर्त्तनिहित दृष्टि से वहाँ का वातावरण ओत-प्रोत रहा है। वैदिक ढंग से निर्मित साक्षसूत्र-समन्वित सृष्टिकर्ता ने भी बहुत ही कलात्मक उत्तरी है। इसके पास ही ब्राह्मण वागीश्वरी की मूर्ति है, जो उतनी ही प्रसन्न और पुलकनकारी है। जल निकासी के निर्मित घड़ियाल की विशालकाय मूर्ति भवोत्पादक है।<sup>16</sup> यहाँ पर एक शालभंजिका की प्रसिद्ध मूर्ति है। जिसका उल्लेख कृष्णमूर्ति ने किया है :-

“नेपाली मूर्तिकला की सर्वतोभावेन ताल-मान में पूर्णतः संतुलित स्त्री-मूर्ति शालभंजिका की है। अनोखी अदा और आहलादकारी शरीरयष्टि का समिश्रण है यह मूर्ति यह बौद्ध-गुंजन से अनुगुंजित-सी प्रतीत होती है। लुम्बिनी वन के आम्रकानन में मायादेवी सिर्थ को जन्म देती है। वह एक शालवृक्ष की डाली थामकर खड़ी है। उसकी ललित

भाव-भंगिमा बौद्ध गाथाओं से ली गई है। मायादेवी प्रसवजात क्लान्ति से शिथिल नहीं है। उसकी सजीवता और चारित्रिक आभा प्रस्तर में फूट पड़ी है।<sup>17</sup>

वाग्वती के तट पर त्रिविक्तम की बड़ी भव्य और दिव्य मूर्ति है। यह उस घड़ी का दृष्ट्य है, जब महाबली दैत्यराट् बलि से वामन भगवान साढ़े तीन डग भूमि का दान ले रहे हैं। त्रिविक्तम के मूर्ति-मण्डल में राक्षसेन्द्र की राजमहिषी और अश्वमेधयज्ञवाले अश्व आदि की मूर्तियाँ भी बड़ी मनोभावन और मुग्धकारी हैं।

श्री पशुपतिनाथ मन्दिर के नीचे वाग्वती नदी के आर्य-घाट पर विरुपाक्ष की एक भव्य मूर्ति है वहीं कूबेर की भी एक मूर्ति है जिसे किरात-मूर्ति भी कहा जाता है। यहीं पर भगवान बुद्ध की एक सर्वांगसुन्दर अतुलनीय मूर्ति है जो 'पुरुष-परिष्कार' से मिलता-जुलता है।<sup>18</sup>

प्रचलित परम्परा के अनुसार श्री पशुपतिनाथ के दर्शन से पहले माता गुहयेश्वरी का दर्शन आवश्यक माना जाता है। नेपाल की अधिष्ठात्री देवी का यह महापीठ गहयेश्वरी घाट पर प्रतिष्ठित है। माता गुहयेश्वरी का मन्दिर बड़ा ही भव्य है। इसकी वास्तुशैली न तो पगोड़ा सदृष्ट है और ना ही चैत्य समान। इसमें आर्यों के मंदिर की शुद्ध शैली भी नहीं अपनाई गई है। यह मंदिर काफी विस्तृत है। आँगन के चारों ओर पुजारियों एवं श्रद्धालुओं के रहने के लिए मकान बने हैं। माता का पीठ आँगन से करीब 3 फीट नीचे अवस्थित है। इसके भीतरी प्रांगण के बाँए में माता का सिद्धपीठ प्रतिष्ठित है। यह रजत-मणित है और कुछ उभरा हुआ-सा दीखता है। इसके बीच एक गोल छिद्र है, जिसमें सदा जल भरा रहता है। छिद्र के ऊपर चाँदी की एक कलश जैसी वस्तु रखी रहती है, जिसे इच्छा होने पर हटाकर छिद्र में से पूजा की जा सकती है।

इस तरह भारत-नेपाल का अन्तः सम्बन्ध मात्र पड़ोसी देश होने के नाते ही नहीं है अपितु युगों-युगों से चले आते ऐतिहासिक, सांस्कृतिक सामाजिक और आर्थिक नाते-रिश्तों के कारण है। हमारी सीमा से सटे हुए बेशक और भी देश है, लेकिन हमारी भावनाओं की अन्तर्धारा की ऐसी समानता, इतनी निकटता और किसी से नहीं है। सुदूर प्राचीन काल से ही इन दोनों देशों की नसों में सप्राणता का एक ही रक्त-प्रवाह बहता रहा है। एक ही संस्कृति और आदर्श का ध्रुवतारा दोनों के जीवन की प्रगति को मार्ग और दिशा देता रहा है। इतिहास के उस अँधेरे युग से ही, जहाँ तक आँखें और मन की आँखें बहुत साफ-सहज नहीं पहुँच पाती, दोनों देशों की अन्तरात्मा को जोड़नेवाला एक अलसित धागा था। जिन कथाओं और किंवदन्तियों पर प्राचीनता और इतिहास की जिन आधार पर शिलाओं पर हमारे अतीत के गौरव की ऊँची इमारत खड़ी है, उनमें अधिकांश से किसी न किसी रूप में नेपाल से भी लगाव रहा है। श्री पशुपतिनाथ उस लगाव का मूलाधार है। अतः नेपाल सम्बन्धों का प्रवाह नदियों के मध्य प्रवाहित होता आ रहा है। और सम्बन्धों की थाति हम युगों से संयोगे हुए हैं।

### संदर्भ सूची :-

1. नेपाल माहात्म्य – अध्याय-5, श्लोक-26
2. तत्रैव – अध्याय-1, श्लोक-22
3. तत्रैव – 1 / 26
4. भारतीय प्रतीक विद्या – डा० जनार्दन मिश्र, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना पृ०

5. भारतीय प्रतीक विद्या पृ० 76 श्लोक 12, 13, 14
6. तत्रैव
7. जाग्रत् नेपाल – ठाकुर श्री रघुनाथ सिंह
8. भारतीय प्रतीक विद्या पृ० 45–46
9. लिंगार्चनतन्त्र : पटल 6
10. पालयुगीन ब्राह्मणधर्म की मूर्तियाँ, 'उत्तर बिहार' जनवरी 1965
11. जाग्रत् नेपाल पृ० – 168
12. जाग्रत् नेपाल पृ० – 163
13. भारतीय प्रतीक विद्या पृ० 431 चित्रफलक 45
14. जाग्रत् नेपाल पृ० – 167
15. शिवपुराण 4 / 3 / 1–4 – 351
16. किंग महेन्द्र ऑफ नेपाल – वाई० जी० कृष्णमूर्ति
17. तत्रैव
18. पुरुष-परिष्कार अर्थात् वैसी मूर्ति जो पदमासन में बैठे आसन का वृत्ताकार दिखाई देना, 'न्यग्रोध-परिमण्डलभाव' यानी वटवृक्ष की तरह गोल शरीर और उसकी शिखाओं की तरह बाहें, लम्बी अंगुलियाँ, उनके बीच फैलावदार चमड़ा, अंगुलियों को सटाने पर छिद्र का नहीं होना, सुकोम चमड़ा, हिरण जैसी जंघा, सिंह जैसा सीना, उज्जवल अविरल दंतपावति, नीलकमल जैसा रंग, सांड जैसी भौंहें, नीलमणि जैसे कोले चमकदार केश, ताल-मानानुसार शरीर यष्ठी।